P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-9* ISSUE-4* December- 2021
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

हिन्दू विवाह में पति-पत्नी का स्तर

Status of Husband and Wife in Hindu Marriage

Paper Submission: 10/12/2021, Date of Acceptance: 20/12/2021, Date of Publication: 21/12/2021

अवधेश कुमार झा
एसोसिएट प्रोफेसर,
समाजशास्त्र विभाग,
हे० न० ब० राज०
स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
नैनी, प्रयागराज,
उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

हिन्दू विवाह एक सामाजिक संस्था है जिसके माध्यम से एक परिवार का निर्माण होता है। जिससे गृहस्थ जीवन का प्रारम्भ माना जाता है। विवाह संस्था के प्रारंभिक काल ऋग्वैदिक समाज में पत्नी का स्थान अत्यंत सम्मानीय था, उसे शिवा, कल्याणी, आदि संबंधों से सम्बोधित किया जाता था। दहेज प्रथा, बाल विवाह, बहुविवाह, पर्दा प्रथा, सतीप्रथा, प्रायः प्रचलित नहीं थे। उत्तर वैदिक काल में पत्नी का स्थान सम्मानीय था परंतु हमें उनका स्तर थोड़ा निम्न प्रतीत होता है। गृहस्थ जीवन के सुखमय व्यतीत होने के लिए पति-पत्नी में प्रेम व समानता अधिक आवश्यक है।

Hindu marriage is a social institution through which a family is formed. Which is considered to be the beginning of household life. In the early period of the institution of marriage, the place of the wife in the Rigvedic society was highly respected, she was addressed with relations like Shiva, Kalyani, etc.Dowry system, child marriage, polygamy, purdah system, sati system, were often not prevalent. In the later Vedic period, the position of the wife was respected, but we find her status to be a bit low. Love and equality between husband and wife is more necessary for the happy life of the householder.

मुख्यशब्दः हिन्दू संस्कृति, सामाजिक संस्था, गृहस्थ जीवन, कल्याणी, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, दहेज़ प्रथा, बहु विवाह , सती प्रथा, पुनर्विवाह, अंत्येष्टि, धर्मसूत्र, बौधायन, कत्यायन, धार्मिक कृत्यों, सह्प्रबंध, सहगामिनी, आधुनिकीकरण, वैवाहिक जीवन, अमंगलसूचक, धर्म, पतिव्रत्य, निष्ठावान, आदर्श, उत्तरदायित्व, आज्ञापालिका, आत्मा, वैश्विकरण, गृहस्थ जीवन ।

Key words: Hindu culture, social institution, household life, Kalyani, purdah system, child marriage, dowry system, polygamy, sati system, remarriage, funeral, Dharmasutra, Baudhayan, Katyayan, religious acts, co-management, sahgamini, modernization, married life, Inauspicious, Dharma, Husbandry, Loyalty, Ideal, Responsibility, Obedience, Spirit, Globalization, Home life.

प्रस्तावना

हिन्दू संस्कृति में विवाह को एक सामाजिक संस्था का रूप दिया गया है, क्योंकि विवाह के माध्यम से ही स्त्री-पुरूष संयुक्त होकर पति-पत्नी बनते है एवं अपने जीवन की आधारशिला रखते है। विवाह द्वारा ही गृहस्थ जीवन का प्रारम्भ होता है व पति-पत्नी व्यक्तिगत एवं सामाजिक सम्बन्धो का संचालन करते है। विवाह के अन्तर्गत पति व पत्नी को जीवन रूपी रथ के दो पहियों की भांति समान माना गया है। एक के बिना दूसरा उस रथ को नहीं चला सकता। अतः दोनों की महत्ता निर्विवाद है। यदि पति एक ओर जीविका का प्रबन्ध करता है तो दूसरी ओर पत्नी भी समुचित रूप में गृहप्रबन्ध करती है। वर्तमान में पत्नी गृहप्रबन्ध के साथ-साथ जीविका प्रबन्ध में भी सहायता करती है, इससे पत्नी का महत्व और बढ़ जाता है।

साहित्यावलोकन

Paper/Book	Author/Year	Description
The Vedic Wedding Book	A.V. Srinivasan (2019)	भारतीय समाज में विवाह का स्वरूप वैश्वीकरण के दौर में तेजी से बदल रहा है।
Bigamy and Hindu Marriage	Vijendra Kumar (2017)	हिंदू विवाह के बदलते स्वरूप में तलाक एक प्रमुख कारण है।
A Relationship in the Nature of Marriage - Hope and	Shyam Krishna Kaushik (2011)	अब समाज में पुरुष और महिला का संबंध विवाह के अलावा भी स्वीकृत किया जा रहा है।

Disappointment		
Divorce and Separation in India	Premchand Dommaraju (2016)	भारतीय समाज में तलाक अब एक टैबू और दुर्लभ घटना नहीं रही है।
Gender, Kinship and Marriage Practices	Sai Thakur (2019)	लिंग के आधार पर शूद्र समाज में हो रहे बदलावों का उनके पारिवारिक जीवन पर गहरा प्रभाव पर रहा है।

ऋग्वैदिक काल में पत्नी का स्थान

विवाह संस्था के प्रारम्भिक काल ऋग्वैदिक समाज में पत्नी का स्थान अत्यन्त सम्मानीय था। ऋग्वेद में स्त्री को घर कहा गया है उसे शिवा कल्याणी आदि सम्बोधन प्रदान किये गये। देवो से पत्नी की प्राप्ति के लिए प्रार्थना की गयी है। स्त्री-पुरूष को संयुक्त रूप से दम्पत्ति कहा गया है जो उनके समान अधिकारों का द्योतक है। ऋग्वैदिक नारी शिक्षित थी हमें ऋग्वेद में कन्याओं के स्वेच्छा से विवाह करने के प्रसंग भी मिलते है। दहेज प्रथा, बाल विवाह, बहुविवाह, पर्दाप्रथा, सती प्रथा प्रायः प्रचलित नहीं थे। विवाह सूक्त से ज्ञात होता है कि विवाह प्रक्रिया में भी वधू पक्ष का स्थान उच्च था वर पक्ष के लोग वधू के पिता के पास कन्या मांगने जाते थे जो वर्तमान स्थिति के विपरीत एक सुन्दर उदाहरण है। विवाह के उपरान्त पत्नी को घर की साम्राज्ञी माना जाता था पति की अनुपस्थिति में वह यज्ञादि क्रियायें भी सम्पन्न करती थी पारिवारिक जीवन में पत्नी का महत्व बहुत अधिक था। परन्तु यह कहना की पति-पत्नी समकक्ष थे उचित प्रतीत नहीं होता। ऋग्वेद में पत्नी के साम्पत्तिक अधिकारों का भी स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। विधवा पुनर्विवाह के साक्ष्य भी प्रायः नहीं मिलते हालांकि पुत्रहीन विधवाओं के लिए नियोग का विधान अवश्य था परन्तु यह ऐच्छिक था या आरोपित यह भी स्पष्ट नहीं है। जबकि पुरूष के लिए पुनार्विवाह का विधान था। ऋग्वेद से हमे बहुपत्नी प्रथा के भी कुछ उद्धहरण प्राप्त होते है। अर्थात् ऋग्वैदिक समाज जिसे हम अपनी संस्कृति का विशुद्ध आदर्श मानते है, में भी पति एवं पत्नी का स्तर समान नहीं था। पत्नी का स्थान सम्मानीय एवं महत्वपूर्णतो था परन्तु पुरूषों के समान वह पूर्णरूपेण अधिकार सम्पन्न नहीं थी मात्र गृहलक्ष्मी के रूप में ही उन्हें मान्यता प्राप्त थी।

उत्तर वैदिक काल में पत्नी का स्थान

उत्तर वैदिक काल में भी पत्नी का स्थान सम्मानीय था परन्तु यहां हमे उनका स्तर थोड़ा निम्न प्रतीत होता है। शतपथ ब्राह्मण में कहा है कि पत्नी के बिना मनुष्य अपूर्ण रहता है। ऐतरेय ब्राह्मण में पत्नी को मित्र कहा गया है। स्त्री को यज्ञ करने व वैदिक ग्रन्थों के पाठन का भी अधिकार था। यास्क के अनुसार यदि कोई पुरूष पुत्रहीन है। तो उसकी विवाहिता पुत्री अन्त्येष्टि कर सकती है। अतः स्त्री को पुरूष की सहधर्मिणी समझा जाता था लेकिन इस समय पत्नी के अधिकार शनैः शनैः कम हो रहे थे एवं उन पर प्रतिबंध बढ़ रहे थे। इस समय पति की आज्ञाकारिणी पत्नी को ही श्रेष्ठ माना जाता था। अनेक स्थानों पर स्त्री की तुलना जुएं व शराब के साथ की गयी है। मैत्रायणी संहिता, शतपथ ब्राह्मण में भी स्त्री के लिए निम्न बाते कही गयी है। पुत्र उत्पन्न करना, पति के साथ धार्मिक कार्यों में भाग लेना व परिवार का उत्तरदायित्व हेतु पत्नी की उपयोगिता था। हालांकि बाल विवाह, दहेज प्रथा,पर्दा सती प्रथा आदि सामान्यतः प्रचलित नहीं थे परन्तु बहुविवाह के उदाहरण उत्तरवैदिक ग्रन्थों से प्राप्त होते है।

पति-पत्नी के रूप में स्त्री-पुरूष ही समानता का स्तर कालान्तर में अत्याधिक असमान होता चला गया। गृहसूत्रों, धर्मसूत्रों व महाकाव्यों का दृष्टिकोण स्त्रियों के प्रति कुछ उदार रहा पर स्मृति काल में स्त्री की दशा अत्यन्त निम्न व हीन हो गयी। आपस्तम्ब धर्मसूत्र, आश्वलायन गृह्यसूत्र, बौधायन, कात्यायन, विष्णु आदि ने धार्मिक कृत्यों में पत्नी की उपस्थिति को महत्वपूर्ण माना है। याज्ञवल्क्य, नारद, शाण्डिल्य पत्नी के प्रति सहृदय रहने को कहते है। रघुवंश, महाभारत में भी पत्नी की महत्ता को स्वीकारा गया है। पत्नी का महत्व व आवश्यकता गृहप्रबंध, धार्मिक कार्यों एवं पति के आज्ञापालन में निहित थी। कहीं भी पत्नी के अधिकारों व समानता के स्तर की बात नहीं कही गयी। मनु का यह कथन ''यत्र नारिस्तु पूजिते रमन्ते तत्र देवता'' भी इसी की पुष्टि करता है। लगभग सभी धर्मशास्त्रकार पत्नी को किसी भी परिस्थिति में पति से तर्क करने या उसका त्याग करने की अनुमति नहीं देते। विषम परिस्थिति में भी पति की आज्ञापालन का निर्देश पत्नी को दिया गया है। गौतम, मनु, वासिष्ठ, बौधायन तथा नारद सभी स्त्रियों को आश्रित एवं परतन्त्र मानते है। महाभारत व रामायण जैसे महाकाव्य भी स्त्री स्वतन्त्रता के पक्षधर नहीं है। अनेक ग्रन्थों में स्त्रियों पर नाना प्रकार के नैतिक लांछन लगाये गये ताकि उन्हें पुरूष की तुलना में हीन व निकृष्ट साबित किया जा सके। उन्हें चारात्रिक रूप से पति के अधीन हो सके। स्त्रियों के तर्क करने की शक्ति प्रतिबन्धित थी। विवाह में पत्नी पति की सहगामिनी नहीं सेविका बन गयी। दूसरी ओर पति को पूर्ण प्रभुता सम्पन्न मानकर उसके समस्त अवगुणों अवैध कृत्यों को भी शास्त्रकारों ने वैधानिक जामा पहनाकर जायत सिद्ध

किया। एक ही विचार या कार्य पति के लिए सही व पत्नी के लिए गलत मान लिया गया और कहीं ना कहीं इतने आधुनिकीकरण व शिक्षा के बावजूद आज भी यहां सर्कीण व घृणित सोच आज भी हमारे समाज का अभिन्न हिस्सा बनी हुयी है जिन्होंने वैवाहिक जीवन में महिलाओं के प्रति अनेकों आदि अपराधों को जन्म दिया है।

स्त्री के पुनर्विवाह का भी शास्त्रों में निषेध ही किया गया है यदि पुनर्विवाह की अनुमति दी भी गयी है तो बहुत सीमित रूप में अनेक प्रतिबन्धों के साथ ताकि स्त्रियाँ स्वयं ही पुनर्विवाह से घृणा करें। पुनर्विवाह करने वाली विधवओं के लिए अलग शब्दों का उच्चारण किया गया व उनकी संतानों के प्रति भी पक्षपात पूर्ण नीति अपनायी गयी। इन सब प्रतिबन्धों का लक्ष्य समाज में पुनर्विवाह करने वाली स्त्रियों के प्रति विरोध का वातारण तैयार करना व अपने निषेध को सही व समाज के हित में ठहराना था। मनु ने कहा है सदाचारी नारियों के लिए कही भी दूसरे पति की घोषणा नहीं हुयी। आपस्तम्ब धर्मसूत्र कहता है कि पुनर्विवाह करने वाली स्त्री का पिता पाप का भागी होता है। यद्यपि कुछ शास्त्रकारों ने स्त्री को विशेष परिस्थितियों में पुनर्विवाह का अधिकार दिया है परन्तु उसे शास्त्रीय महत्ता प्रदान नहीं की गयी। स्मृतियों के अनुसार कन्या का दान तो केवल एक बार दिया जाता है युग युग से बस यही परम्परा चली आ रही है।

हिन्दू विधवा की स्थिति उत्यन्त शोचनीय थी। उन्हें अमंगलसूचक माना जाता था। वह किसी भी सामाजिक उत्सव का हिस्सा नहीं बन सकती थी। यद्यपि विधवाओं को सम्पत्ति विषयक कुछ अधिकार प्रदान किये गये थे। उन्हें कठोर नैतिक जीवन व्यतीत करना पड़ता था उनका जीवन पूर्णतया प्रतिबंधित व मृत व्यक्ति के समान था। कात्यायन के अनुसार यदि विधवा संयमित व पवित्र जीवन बिताती है तो पुत्रहीन होकर भी स्वर्ग को प्राप्त कर सकती है।

बाणभट्ट ने हर्षचरित्र में विधवओं की दुर्दशा का वर्णन किया है। स्कन्दपुराण, मदनपरिजात व निर्णय सिन्धु में विधवओं के मुण्डन की बात भी कही गयी है। मनु, बृहस्पति, रामायण, महाभारत, पुराण आदि सभी विधवओं पर अनेक प्रतिबन्ध आरोपित करते है व उनकी ही दशा का वृतान्त भी सुनाते है। विधवाओ पर अनेक के लिए शास्त्रकारों ने पवित्र व कठोर संयमित जीवन द्वारा स्वर्ग की बात कही ताकि व इन प्रतिबन्धों में बंधी रहे व अधर्म होने के डर से विधवा जीवन को स्वीकार करे एवं पुनर्विवाह की ओर अग्रसर ना हो। विधवाओं की इसी दुर्दशा ने सती प्रथा को बल दिया। विधवा का नरकीय जीवन भोगने से बेहतर स्त्रियां सती हो जाना पसंद करती थी।

दूसरी तरफ पुरूष को धर्म के नाम पर प्रथम विवाहिता पत्नी की मृत्यु होने जाने पर शीघ्र ही शास्त्रोक्त रीति से दूसरा विवाह करने पर बल दिया गया जहां विधवा के लिए आजीवन उसके मृत पति के लिए सम्पूर्ण समर्पण की आशा की जाती थी वहीं बस एक पत्नी का महत्व पति के जीवन में, जीवनत रहते हुये व पुत्र संतान उत्पन्न करने में था ये किनती भयंकर विषमता थी पति पत्नी के स्तर की । पत्नी का पुनर्निवाह हीन, निम्न व तुच्छ व पति को दर्म का आवरण देकर उसकी यौम आवस्यकताओं की पूर्ति के लिए तुरन्त पुनर्विवाह का विधान।ये कैसा खोखलापरन व घृणित पहलू था हमारे उच्च आदर्श हिन्दू संस्कृति का । हमारे आदरणीय शास्त्रकार दो व्यक्तियों के लिए इतने भिन्न-भिन्न विधान कैसे कर सकते थे क्या कोई ईश्वर,कोई धर्म, कोई मानवता ऐसा करना का संदेश देते है। यो समस्या आज भी हमारे समाज में व्याप्त है।एक विधवा का पुनर्विवाह आज भी स्वीकार्य नहीं है।

पत्नी की मृत्यु होने पर पुनर्विवाह के अतिरिक्त यदि पत्नी से पुरूष संतान नहीं है तो भी शास्त्रकार पुरूष को एक नहीं चार तक विवाह करने की अनुमति देते है। कौटिल्य, मनु बौधायन, आपस्तम्ब याज्ञवल्क्य आदि शास्त्रकार पुरूष को पुनर्विवाह का अनुमति देते है।हालांकि शीलवान व पुत्रवती पत्नी के त्याग का अनुमति नहीं दी गयी। पुत्र ना होने का दायित्व भी बेचारी स्त्रियों के कंधों पर ही डाला गया अद्यपि विज्ञान इसका उलटा तथ्य प्रमाणित करता है फिर भी स्थिति य्रथावत है। विधवाओं के लिए पूर्व में प्रचलित नियोग प्रथा भी समाप्त कर दी गयी न उसे पशुधर्म घोषित किया गया।

हमारे शास्त्रों में पत्नी के लिए पातिव्रत्य धर्म का बहुत ही गुणवान किया गया है। मनु जी कहते है कि चाहे कितना ही दूराचारी तथा गुणहीन क्यों ना ही हो, पत्नी को देवतुल्य समझकर उसकी पूजा करनी चाहिए। महाभारत व रामायण से भी पतिपरायणता व पति सेवा के अनेक वृतान्त मिलते है। अभिज्ञान शाकुंतलम में कण्व ऋषि शकुन्तला को पातिव्रत्य का पालन करने को कहते है । सारे हिन्दू धर्मग्रन्थ व शास्त्रकार पातिव्रत्य पर अत्याधिक जोर देते हैं। पत्नी को यह नहीं देखना चाहिए कि उसका पति उसके लिए कहाँ तक निष्ठावान है बस एकनिष्ठ होकर उसमें ध्यान लगाना चाहिए। पार्वती, सावित्रि, दमयन्ती,सीती, द्रौपदी, सुकन्या आदि अनेक पतिव्रतायें हुयी हैं, जिन्हें समाज के लिए आदर्श माना जाता था।

जितना बल पातिव्रत्य पर दिया गया पत्नीव्रत पर नहीं। शास्त्रकारों ने पुरूषों को इतनी स्वतन्त्रता प्रदान की कि एकपत्नी व्रत धारी पुरूष बहुत सीमित संख्या में है। नल, श्रीराम और न युधिष्ठिर प्रतीत होता है सारे शास्त्र ग्रंथ सब का सार एक ही है पुरूषों को पूर्ण अधिकार सम्पन्न व स्त्री को परतन्त्र व कर्तव्यनिष्ठ। क्या यह है हमारी संस्कृति,किनता करूणामय प्रतीत होता है।

वैदिककाल में कन्या की स्थिति

वैदिककाल में कन्या सम्पत्ति की अधिकारी नहीं समझी जाती थी। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि पति पत्नी की अपनी चल सम्पत्ति समझता था। विवाह के समय दिये गये उपहार भेंट ही पत्नी की सम्पत्ति होते थे। महाभारत से विदित होता है कि युधिष्ठिर ने अपनी पत्नी को दांव पर लगा दिया था। धर्मसूत्रकार पति की अनुपस्थिति में पत्नी को चल सम्पत्ति में से आवश्यक खर्च करने की अनुमति देते हैं। स्त्री धन पर स्त्री का पूर्णाधिकार था मनु ने इसका वर्णन किया हैं। याज्ञवल्क्य, विष्णु कात्यायन पुत्रहीन विधवा को पूर्ण सम्पत्ति का स्वामी मानने के पक्ष में थे परन्तु मनु, नारद, आपस्तम्ब, इसके विरूद्ध थे। विज्ञानेश्वर ने विधवा को अचल सम्पत्ति बेचने का भी अधिकार दिया। अतः स्त्रियों के सम्पत्ति संबंधी अधिकार बहुत सीमित व अस्पष्ट थे। इस विषय पर बहुत अधिक मतभेद है। केवल विधवा स्त्री को ही सम्पत्ति के कुछ अधिकार थे उस पर भी सब एकमत नहीं थे। स्वतन्त्रता के पश्चात् ही कानून द्वारा स्त्री के सम्पत्ति संबंधी अधिकार निश्चित हो पाये।

शास्त्रों में स्त्रियों पर अनेक प्रकार के नैतिक लांछन लगाये गये है जिनका उद्देश्य स्त्री को पुरुष की तुलना में हीन व निकृष्ट साबित करना था यह जताना था कि पत्नी के व्यक्तिगत अवगुणों के कारण ही उसका उत्तरदायित्व पति को सौंपा गया है वह स्वतंत्रता के योग्य है ही नहीं। जहाँ पुरुष को केवल स्त्री के भरण पोषण व रक्षण का दायित्व सौंपा गया वहीं कर्तव्य के नाम पर पत्नी पुरुष की दासी बना दी गयी उसका अस्तित्व मात्र पति की आज्ञापालिका के रूप में था। वाराहमिहिर ने स्त्रियों के सम्बन्ध में ओजस्वी बाते कहकर शास्त्रकारों की अनर्गल आधारहीन उक्तियों का विरोध किया है वह कहते है "स्त्रियों में वे कौन से दोष है जो पुरुष में नहीं है। पुरुष विवाह की प्रतिज्ञाओं को बहुत हल्केपन से देखते है जबकि स्त्रियां उनका पालन करती है। यौन प्रेरणा से कौन अधिक कष्ट पाता है वे पुरुष जो बुढापे में भी दूसरा विवाह कर लेते है या वे स्त्रियां जो यौवन काल में विधवा होने पर पवित्र जीवन बिताती है। प्रेम में किसकी निष्ठा अधिक सच्ची होती है उस पुरूष की जो पहली पत्नी के मरते ही दूसरा विवाह कर लेते है अथवा उस स्त्री को जो चिंता पर भी अपने पति का अनुसरण करती है। यह कहना घृष्टता व अकृतज्ञता है कि स्त्रियां अस्थिर व दुर्बल होती है। पति व पत्नी दोनों ही पापी है यदि वह विवाह के प्रति सच्चे नहीं है। स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा उच्च है।

पति-पत्नी को हमारी हिन्दू संस्कृति में दो शरीर एक आत्मा का उद्बोधन प्रदान किया गया है परन्तु क्या व्यहारिक रूप में यह सत्य था अथवा सत्य है यह तो उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट ही है। हमारी प्राचीन संस्कृति से लेकर वर्तमान काल तक जहाँ पति के रूप पुरूष का वर्चस्व रहा वहीं पत्नी की स्थिति परिवर्तित होती रही यद्यपि यह परिवर्तन सदैव प्रगतिशील नहीं रहे। पत्नी को अधिकार व सम्मान दिया गया पर एक सशक्त स्त्री के रूप में नहीं वरन पति एवं परिवार की देखभाल करने व पुत्र उत्पन्न करने के प्रतिफल के रूप में और यह भी तभी तक था जब तक स्त्री आज्ञाकारिणी व लाभप्रद थी, विरोध की स्थिति का वो प्रश्न ही नहीं था। स्त्रियों के जीवन की त्रासदी विधवा प्रथा, बहुपत्नीत्व, सती, दहेज प्रथा व बाल विवाह के रूप में चली आयी है जबकि पुरुष के जीवन को हमारे संस्कृति के रक्षकों ने विलासिताओं से परिपूर्ण कर दिया था। ऐसे में पति-पत्नी की समानता कभी भी प्रासांगिक नहीं हो पायी संस्कृति के आरम्भ से लेकर काल दर काल पत्नी के अधिकारों का हनन होता गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद बने कानूनी द्वारा पति-पत्नी समानता का अच्छा प्रयास किया गया परन्तु इस समानता के पूर्ण व्यवहारिक स्वरूप के लिए हम आज भी संघर्षरत है।

वर्तमान सन्दर्भ

वर्तमान सामाजिक परिपेक्ष्य में हम यह देखते हैं कि जिस प्रकार से नारी से संभंधित सामाजिक नियमों एवं संबंधों का विवरण शास्त्रों में किया गया है वास्तविकता में आज वैसी स्थिति नहीं है। समाज के बदलते हुए प्रारूप को देखते हुए हमने यह पाया है कि अब हिन्दू विवाह संस्कृति में काफी बदलाव आये हैं। वस्तुतः आज कल समाज (विशेषतः नगरीय समाज) में लोग सुसंगत विवाह के साथ-साथ प्रेम विवाह भी कर रहे हैं तथा इसे सामाजिक स्वीकृति भी प्राप्त हो रही है। इसके कारण साथी चुनने में पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं का पक्ष भी महत्त्वपूर्ण हो गया है। यह भी देखा जा रहा है कि स्त्रियों में बढते शिक्षा के कारण परिवार में इनकी स्थिति तुलनात्मक रूप से अच्छी हुई है। उच्चतम न्यायलय के कुछ प्रमुख निर्णयों के कारण पारिवारिक परिस्थिति में जो विसंगितियाँ थीं वो दूर हुईं हैं। जैसे बाल विवाह का कम होना, विधवा पुनर्विवाह का होना, सती प्रथा का हटना, दहेज़ का कम होना, आदि।

महिलाओं में शैक्षिणिक स्तर बढने एवं महिला सशक्तिकरण के कारण अब महिलाएं व्यापर तथा नौकरी पेशा में आने लगी हैं जिससे इनकी आर्थिक स्थिति मजबूत हुई है।फलस्वरूप पारिवारिक जीवन में इनका महत्व बढ़ा है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. हिन्दुओं में विवाह एक संस्कार के रूप में।
2. ऋग्वेदिक काल परिवार में नारी की स्थिति।
3. महाभारत व रामायण महाकाव्य में नारी की स्वतंत्रता।
4. उत्तर वैदिक काल में नारी का शैक्षणिक स्तर।
5. हिन्दुओं में स्त्री पुनर्विवाह का निषेध या प्रचलन।
6. बालविवाह, दहेज़, आदि सामाजिक बुराइयों का प्रचलन।

निष्कर्ष

आज आधुनिकता व वैश्वीकरण के इस दौर में नारी की स्थिति निसंदेह बेहतर हुई है, उसे कानूनी रूप से समानता व अधिकार भी मिले है परन्तु उन स्त्रियों की संख्या बहुत अल्प है। बहुसंख्यक स्त्रियों आज भी उन्हीं प्रतिबंधों व बंधनों के साथ जी रही है जो पूर्ववर्ती कालों में उन पर आरोपित किये गये थे। उनकी सुधरी स्थिति में भी उनका स्तर द्वितीय ही है इसका कारण वो सदियों से चली आ रही संकीर्ण मानसिकता है जिसे हमारा समाज छोड़ने के लिए तैयार नहीं है। इसके लिए स्वयं स्त्रियाँ भी उत्तरदायी है क्योंकि एक स्त्री भी इन रूढ़ियों का विरोध करने की बजाय उनकी संरक्षक बनकर उन्हें आगे बढ़ाती रहती है।
गृहस्थ जीवन के सुखमय व्यतीत होने के लिए पति-पत्नी में प्रेम व समानता अति आवश्यक है परन्तु यह तभी सम्भव है जब जन्म से ही बालकों का है, पालन-पोषण इसी सोच व संस्कारों के साथ किया जाये तभी हम पति-पत्नी के समान स्तर का आदर्श व्यवहारिक रूप प्राप्त कर सकते है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *ऋग्वेद 3.53.4*
2. *वही0 3.53.6, 10.85.37*
3. *मही0 10.85.26*
4. *वही0 10.85.46*
5. *वही० 4.29.8*
6. *वही० 10.85.26*
7. *शतपथ ब्राह्मण 5.2.1.10, 8.7.2.3*
8. *महाभारत 12.144.16*
9. *उद्धृत के० सी० श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास*
10. *अथर्ववेद 3.18*
11. *बौधायन-172-9, कात्यायन, 8.5, विष्णु 26.24*
12. *मनुस्मृति 9.95*
13. *लोहित 653-659, मनु 9.20-30*
14. *गौतम 18.1, वासिष्ठ 5.1-3*
15. *महाभारत, अनुशासन पर्व, 38-12-29 19.93 19.6*
16. *रामायण, अरण्यकाण्ड- 45.29-30*
17. *मनुस्मृति 9,94-95*
18. *बृहत्संहिता 74.5, 6, 11, 15,*
19. *आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2.6.13.3-4*
20. *कात्यायन*
21. *इर्षचरित्र 0, अन्तिम वाक्यांश*
22. *उद्धृत डा० पी०वी० काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० 330, 331*
23. *याज्ञवल्क्य स्मृति, विवाह प्रकरण, पृ0 56*
24. *मनुस्मृति 9.66 34. महाभारत, आदिपर्व-296.27-29*
25. *मनु 1, 154.0 36. शुक्रनीति 23, 25*
26. *महाभारत 11.0.40*
27. *उद्धृत, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1 पृ० 329)*